

सुनियोजित साजिश के तहत असंवैधानिक डेथ-सर्टिफिकेट जारी किया, जो घोर अनुशासनहीनता का परिचायक है तथा एक सरकारी सेवक की आचार संहिता के विरुद्ध है। डा.सी.के. भगत को चिकित्सकीय मर्यादा के उल्लंघन और आपत्तिजनक आचरण के कारण तत्काल प्रभाव से सेवामुक्त किया जाता है।

डा. सी.के. भगत की प्रतिक्रिया:

कामरेड विजय मित्र, काश, तुम्हारे पास दिल न होता!

(हंस, नवंबर 1999)

* ————— *

अवधेश प्रीत

कथाकार अवधेश प्रीत का जन्म 13 जनवरी 1958 को तराँव, गाजीपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ, लेकिन पेशे के कारण रहनवास बिहार में। अपनी कहानियों में प्रायः बिहार को ही आधार बनाया है। बिहार की समस्याओं, और बिहार के सच को अपनी कहानियों में खूब उठाया है। राजेन्द्र यादव ने बिहार के महत्वपूर्ण कहानीकारों में अवधेश को शुमार किया है। बिहार के कई सम्मानों से सम्मानित भी हैं। चार कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हस्तक्षेप, नृशंस, हमज़मीन और कोहरे में कंदील। कई कहानियों के नाट्य मंचन हुए हैं। बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान (1997), विजय वर्मा कथा सम्मान (2001), फणीश्वर नाथ रेणू सम्मान (2002-03) डॉ. सुरेन्द्र चौधरी कथा सम्मान (2004) से सम्मानित हैं।

सम्पर्क :- कृष्णा निवास, सुमति पथ, रानीघाट,
महेन्द्र, पटना - 800006
मो. - 09431094596

शवयात्रा

ओमप्रकाश वाल्मीकि

चमारों के गाँव में बल्हारों का एक परिवार था, जो जोहड़ के पार रहता था। चमारों और बल्हारों के बीच एक सीमा रेखा की तरह था जोहड़। बरसात के दिनों में जब जोहड़ पानी से भर जाता था तब बल्हारों का संपर्क गाँव से एकदम कट जाता था। बाकी समय में पानी कम हो जाने से किसी तरह वे पार करके गाँव पहुँचते थे। यानी बल्हारों के गाँव तक जाने का कोई रास्ता नहीं था। रास्ता बनाने की जरूरत कभी किसी ने महसूस ही नहीं की थी।

जब किसी चमार को उनकी जरूरत पड़ती, तो जोहड़ के किनारे खड़े होकर आवाज लगा देता। जोहड़ इतना बड़ी भी नहीं था, कि बल्हारों तक आवाज ही न पहुँचे। आवाज सुनकर वे बाहर आ जाते थे।

परिवार में सिर्फ दो जन ही रह गए थे - सुरजा, जिसकी उम्र ढल चुकी थी; और उसकी बेटी सन्तो, जो शादी के तीसरे साल में ही विधवा होकर मायके लौट आई थी। सुरजा की घरवाली को मरे भी तीन साल हो गए थे। घर-बाहर की तमाम जिम्मेदारियाँ सन्तो ने सँभाल रखी थी। सुरजा जैसे भी काफी कमजोर हो चला था। उसे सूझता भी कम था। लेकिन फिर भी गाँव के छोटे-मोटे काम वह कर ही देता था।

सुरजा का एक बेटा भी था, जो दस-बारह साल की उम्र में ही घर छोड़कर भाग गया था। कुछ साल इधर-उधर भटकने के बाद उसे रेलवे में नौकरी मिल

गई थी। इस नौकरी ने ही उसे पढ़ने-लिखने की ओर आकर्षित किया था। इसी तरह उसने हाईस्कूल करके तकनीकी प्रशिक्षण लिया और रेलवे में ही फिटर हो गया था। नाम था कल्लू, जो अब कल्लन हो गया था।

जब सन्तो की शादी हुई थी, सारा खर्च कल्लन ने ही उठाया था। सुरजा के पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी। कल्लन की शादी भी रेलवे कॉलोनी में ही हो गई थी। उसके ससुर भी रेलवे में ही थे। उसे पढ़ी-लिखी पत्नी मिली थी, जिसके कारण उसके रहने-सहन में फर्क आ गया था। उसके जीवन का ढर्रा ही बदल गया था।

गाँव वह यदाकदा ही आता था। लेकिन जब भी वह गाँव आता, चमार उसे अजीब-सी नजरों से देखते थे। कल्लू से कल्लन हो जाने को वे स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। उनकी दृष्टि में वह अभी भी बल्हार ही था, समाज-व्यवस्था में सबसे नीचे यानी अछूतों में भी अछूत।

गाँव में वह अपने आपको अकेला महसूस करता था। परिवार के बाहर एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिससे वह दो घड़ी बतिया सके। गाँव के पढ़े-लिखे लोग भी उससे कटे-कटे रहते थे। आखिर वह था तो बल्हार ही, जोहड़ पार रहनेवाला। गाँववाले उसे कल्लू बल्हार ही कहकर बुलाते थे। उसे यह संबोधन अच्छा नहीं लगता था। नशतर की तरह उसे बींधकर हीन भावना से भर देता था।

इस बार वह काफी दिन बाद गाँव आया था। उसने आते ही सुरजा से कहा, “बापू, मेरे साथ दिल्ली चलो। सरकारी मकान में सब एक साथ रह लेंगे।”

“ना बेटे, इब आखरी बखत में यो गाँव क्यूँ छुड़वावे... पुरखों ने यहाँ आक्के किसी जमाने में डेरा डाल्ला था। यहीं मर-खप्प गए, इसी माट्टी में। इस जोहड़ की ढैंग पे रहके जिनगी काट दी। इब कहाँ जांगे,” सुरजा ने आँखें मिचमिचाकर अपने मन की बात कही थी, जैसे अतीत में वह कुछ ढूँढ़ रहा था।

कल्लन ने सन्तो की ओर देखा। वह तो चाहती थी, इस जहालत से छुटकारा मिले। लेकिन बापू की बात काटने का उसमें न कभी पहले हौसला था, न अब

है, बस चुपचाप बैठकर पैरे के अँगूठे से मिट्टी कुरेदने लगी थी। जैसे उसका सोच उसे कहीं बहुत दूर ले जा रहा था, जहाँ दूर-दूर तक भी कोई किनारा दिखाई नहीं पड़ता था। कल्लन ने जोर देकर कहा, “बापू, यहाँ न तो इज्जत है, ना रोटी, चमारों की नजर में भी हम सिर्फ बल्हार हैं... यहाँ तुम्हारी वजह से आना पड़ता है... मेरे बच्चे यहाँ आना नहीं चाहते... उन्हें यहाँ अच्छा ही नहीं लगता...”

उसकी बात बीच में ही काटकर सुरजा बोला, “तो बेटे, हियाँ मत आया कर... म्हारी तो कट जागी इसी तरह। बस, सन्तो की फिकर है। यो अकेल्ली रह जागी... यो टूटा-फूटा घर भी शायद अगली बारिश ना देख पावे। तुझे जो म्हारी चिन्ता है, तो तू इस घर कू पक्का बणवादे...” सुरजा के मन में यह बात कई बार आई थी। लेकिन कह नहीं पाया था। आज मौका पाकर कह दिया।

“बापू, मेरे पास जो दो-चार पैसे हैं, उन्हें यहाँ लगाकर क्या होगा। आपके बाद मैं तो यहाँ रहूँगा नहीं... सन्तो मेरे साथ दिल्ली चली जाएगी,” कल्लन ने साफ-साफ कह दिया।

सुनते ही सुरजा भड़क गया। उसके मुँह से गालियाँ फूटने लगीं। चिल्लाकर बोला, “तू! मेरे मरने का इंतजार भी क्यूँ करै है... इसे आज ही ले जा। और हाँ, अपने पैसों की धौंस मुझे ना दिखा... अपने धौरे रख... जहाँ इतनी कटगी है, आगे बी कट ही जागी।”

उन दोनों के बीच जैसे अचानक संवाद सूत्र बिखर गए थे। खामोशी उनके इर्द-गिर्द फैल गई थी।

सुबह होते ही कल्लन दिल्ली चला गया था। पैसों का बंदोबस्त करके वह हफ्ते भर में लौट आया था। साथ में पत्नी सरोज और दल साल की बेटी सलोनी भी आई थी। बेटे को वे उसकी ननिहाल में छोड़कर आ गए थे। कल्लन ने आते ही बापू से कहा, “किसी मिस्तरी से बात करो। कल ईंटों का ट्रक आ जाएगा।” सुनते ही सुरजा की आँखों में चमक आ गई थी। उसे कल्लन की बात पर

विश्वास ही नहीं हुआ था। लेकिन कल्लन ने उसे विश्वास दिला दिया था। वह उसी वक्त मिस्तरी की तलाश में निकल पड़ा था।

गाँव में ज्यादातर मकान सूरतराम ठेकेदार ने बनाए थे। सुरजा उसी के पास पहुँचा, “ठेकेदारजी, म्हारा भी एक मकान बना दो।”

सूरतराम ने पहले तो सुरजा को ऊपर से नीचे तक देखा। तन पर ढंग का कपड़ा नहीं और चला है पक्का मकान बनवाने। सूरतराम जल्दी में था। उसे कहीं जाना था। उसने हंसकर सुरजा को टाल दिया, “आज तो टेम ना है, फिर बात करेंगे।”

सुरजा ने हार नहीं मानी। सुबह ही वह मुँहअँधेरे निकल पड़ा था। पास के गाँव में साबिर मिस्तरी था। पुराना कारीगर। सुरजा ने उसे अपने आने का मकसद बताया। साबिर मान गया था, “ठीक है, मैं कल आके देख लूँगा। अपना मेहनताना पेशगी लूँगा।”

“ठीक है मिस्तरीजी। कल आ जाओ... जोहड़ पे ही म्हारा घर है,” सुरजा अपनी खुशी छिपा नहीं पा रहा था। लौटते समय उसके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। कमजोर शरीर में भी जैसे स्फूर्ति भर गई थी।

जब तक वह लौटकर घर पहुँचा, ईंटें आ चुकी थीं। लाल-लाल ईंटों को देखकर सुरजा अपनी थकावट भूल गया था। वह उल्लास से भर उठा था। उसने ऐसी खुशी इससे पहले कभी महसूस ही नहीं की थी।

जोहड़ पार ईंट उतरती देखना गाँव के लिए किसी आश्चर्य से कम नहीं था। पूरे गाँव में जैसे भूचाल आ गया था। गाँव के कई लोग जोहड़ के किनारे खड़े थे।

रामजीलाल कीर्तन सभा का प्रधान था। रविदास जयन्ती पर रात-भर कीर्तन चलता था। भीड़ में वह भी खड़ा था। जब उससे रहा नहीं गया तो चिल्लाकर बोला, “अबे ओ! सुरजा... यो इन्टे कोण लाया है?”

सुरजा ने उत्साहित होकर कहा, “अजी बस, म्हारा कल्लण पक्का घर बणवा रिया है।”

रामजीलाल की आँखें फटी की फटी रह गईं। अपने भीतर उठते ईर्ष्या-द्वेष को दबाकर उसने कहा, “यो तो चोखी बात है सुरजा... पर पक्का मकान बणवाने से पहले परधानजी से तो पूछ लिया था या नहीं?”

रामजीलाल की बात तीर की तरह सुरजा के सीने में उतर गई। उसे लगा, जैसे कोई सूदखोर साहूकार सामने खड़ा धमकी दे रहा है। गुस्से पर काबू पाने का असफल प्रयास करते हुए सुरजा गुर्गया, “परधान से क्या पूछणा....?”

“फेर भी पूछ तो लेणा चाहिए था,” कहकर रामजीलाल तो चला गया लेकिन सुरजा को संशय में डाल गया था।

रामजीलाल सीधा प्रधान के पहुँचा। जोहड़ पार के हालात नमक-मिर्च लगाकर उसने प्रधान बलराम सिंह के सामने रखे। बलराम सिंह ने उस वक्त कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। सिर्फ सिर हिलाकर मूँछों पर हाथ फेरता रहा। प्रधान भी घाघ था। वह रामजीलाल की फितरत से वाकिफ था। उसके चले जाने के बाद वह कुछ गमगीन-सा हो गया था। सुरजा बल्हार पक्का मकान बनवा रहा है, यह बात उसे बैचेन करने के लिए काफी थी। वैसे भी सुरजा गाँव के लिए अब उतना उपयोगी नहीं था।

यह खबर पूरे गाँव में फैल गई थी, जोहड़ पार बल्हारों का पक्का मकान बन रहा है। रेलवे की कमाई है, ईंटों का ट्रक आ गया है। सीमेंट, रेत, बजरी, सरिये आ रहे हैं। बात फैलते-फैलते इतनी फैल गई कि मकान नहीं गाँव की छाती पर हवेली बनेगी। खिड़की-दरवाजों के लिए सागौन की लकड़ी आ रही है, सुना है रंगीन संगमरमर के टाइल भी आ रहे हैं। जितने मुँह उतनी बातें।

अगले दिन सुबह ही प्रधान का आदमी आ धमका था जोहड़ के किनारे। सुरजा को मन मार के उसके साथ जाना पड़ा।

सुरजा को देखते ही बलराम सिंह चीखा, “अंटी में चार पैसे आ गए तो अपनी औकात भूल गया। बल्हारों को यहाँ इसलिए नहीं बसाया था कि हमारी छाती पर हवेली खड़ी करेंगे.... वह जमीन जिस पर तुम रहते हो, हमारे

बाप-दादों की है। जिस हाल में हो... रहते रहो... किसी को एतराज नहीं होगा। सिर उठा के खड़ा होने की कोशिश करोगे तो गाँव से बाहर कर देंगे।”

बलराम सिंह का एक-एक शब्द बुझे तीर की तरह सुरजा के जिस्म को छलनी-छलनी कर गया था। सुरजा की आँखों के सामने जिन्दगी के खट्टे-मीठे दिन नाचने लगे। जैसे कल ही की बात हो। क्या नहीं किया सुरजा ने इस गाँव के लिए, और बलराम चुनाव के दिनों में एक-एक वोट के लिए कैसे मिन्नतें करता था, तब सुरजा बल्हार नहीं, सुरजा ताऊ हो जाता था। सुरजा ने एक सर्द साँस छोड़ी। बिना कोई जवाब दिए वापस चल दिया। बलराम सिंह ने आवाज देकर रोकना चाहा। लेकिन वह रुका नहीं। बलराम सिंह की चीख अब गालियों में बदल गई, जो बाहर तक सुनाई पड़ रही थी।

घर पहुँचते ही सुरजा ने कल्लन से कहा, “तू सच कहवे था कल्लू.... यो गाँव रहणे लायक ना है।” उसकी लम्बी मूँछें गुस्से में फड़फड़ा रही थीं। आँखों के कोर भीगे हुए थे।

“बापू, अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा... ये ईंटें तो कोई भी खरीद लेगा, ये मकान बनने नहीं देंगे,” कल्लन ने सुरजा को समझाने की कोशिश की। लेकिन सुरजा ने भी जिद पकड़ ली थी, वह झुकेगा नहीं। जो होगा देखा जाएगा। उसने मन ही मन दोहराया।

“ना, बेट्टे, मकान तो ईब बणके रहवेगा.... जान दे दूँगा, पर यो गाँव छोड़के ना जाऊँगा,” सुरजा के गहरे आत्मविश्वास से कहा।

कल्लन अजीब-सी दुविधा में फँस गया था। भावावेश में आकर वह ईंटें तो ले आया था, पर गाँव के हालात देखकर उसे डर लग रहा था। कहीं कोई बवेला न उठ खड़ा हो। पत्नी सरोज और बेटी सलोनी साथ आ गए थे। लेकिन सलोनी को यहाँ आते ही बुखार हो गया था। सरोज के पास जो दो-चार गोलियाँ थीं, वे दे दी थीं सलोनी को। लेकिन बुखार कम नहीं हुआ था। सरोज का मन घबरा

रहा था। वह लगातार कल्लन से जाने की जिद कर रही थी, “बेकार यहाँ मकान पर पैसा लगा रहे हो। सन्तो हमारे संग रहेगी। बापू को समझाओ।” लेकिन कल्लन सुरजा को समझाने में असमर्थ था। उसने सरोज से कहा, “अब, आखिरी बखत में बापू का जी दुखाना क्या ठीक होगा?” सरोज चुप हो गई थी।

सुरजा ने रात-भर जागकर ईंटों की रखवाली की थी। एक पल के लिए भी आँखें नहीं झपकी थीं सुबह होते ही वह साबिर मिस्तरी को बुलाने चल दिया था। सुरजा को डर था, कहीं कोई उसे उलटी-सीधी पट्टी न पढ़ा दे, उसे अब किसी पर भी विश्वास नहीं था।

सलोनी का बुखार कम नहीं हो रहा था। सरोज ने कल्लन से किसी डॉक्टर को बुलाने के लिए कहा। गाँव-भर में सिर्फ एक डॉक्टर था। कल्लन उसे ही बुलाने के लिए चल दिया।

कल्लन को देखते ही डॉक्टर ने मना कर दिया। सामान्य पूछताछ करके कुछ गोलियाँ पुड़िया में बांधकर दे दी। कल्लन ने बहुत मिन्नतें कीं, “डाक्टर साहब, एक बार चल के तो देख लो?” डॉक्टर टस से मस नहीं हुआ। कल्लन ने कहा, “मरीज को यहीं आपके क्लीनिक में लेकर आ जाता हूँ।”

“नहीं.... यहां मत लाना... कल से मेरी दुकान ही बंद हो जाएगी। यह मत भूलो तुम बल्हार हो,” डॉक्टर ने साफ-साफ चेतावनी दी, “ये दवा उसे खिला दो, ठीक हो जाएगी।”

कल्लन निराश लौट आया था। डॉक्टर ने जो गोलियाँ दी थीं, वे भी असरहीन थीं। बुखार से बदन तप रहा था। तेज बुखार के कारण वह लगातार बड़बड़ा रही थी। सन्तो उसकी सेवा-टहल में लगी थी। एक मिनट के लिए भी वहाँ से नहीं हटी थी। सरोज की चिन्ता बढ़ रही थी। उसके मन में तरह-तरह की शंकाएँ उठ रही थीं।

सुरजा सुबह का गया दोपहर बाद लौटा था। थका-हारा, हताश। उसे इस हाल में देखकर कल्लन ने पूछा “क्या हुआ बापू?” सुरजा ने निढाल स्वर में

कहा, 'होणा क्या था? मिस्टरी कहीं दूर रिश्तेदारी में गया है। दस-पन्द्रह दिन बाद आवेगा... बेट्टे! मुझे ना लगे इब वो आवेगा।' सुरजा ने अपने मन की हताशा जाहिर की।

"क्यों, बापू, हम तो उसकी मेहनत का पैसा उसे पेशगी दे रहे थे, फिर भी वह मुकर गया," कल्लन ने ताज्जुब जाहिर किया।

"गाँव के ही किसी ने उसे रोका होगा... साबिर ऐसा आदमी तो ना है.. . वह भी इनसे डर गया दिक्खे," सुरजा ने गहरे अवसाद में डूबकर कहा। दोनों गहरी चिंता में डूब गए थे।

"सलोनी का जी कैसा है?" सुरजा ने पूछा।

"उसकी तबीयत ज्यादा ही बिगड़ गई है। अस्तपाल ले जाना पड़ेगा," कल्लन ने चिंता व्यक्त की।

"किसी झाड़-फूँकवाले कू बुलाऊँ..." कहीं कुछ ओपरा ना हो?" सुरजा ने मन की शंका जताई।

"नहीं, बापू... मैं कल सुबह ही उसे लेकर शहर जाऊंगा। बस, आज की रात ठीक-ठाक कट जाए," कल्लन के स्वर में गहरी पीड़ा भरी हुई थी। सुरजा ने उसे ढाढ़स बँधाया।

पूरी रात जागते हुए कटी थी। सलोनी की तबीयत बहुत ज्यादा बिगड़ गई थी। सुबह होते ही कल्लन ने सलोनी को पीठ पर लादा। उसके इर्द-गिर्द ठीक से कपड़ा लपेटा। सरोज साथ थी। वे धूप चढ़ने से पहले शहर पहुँच जाना चाहते थे।

शहर गाँव से लगभग आठ-दस किलोमीटर दूर था। आने-जाने का कोई साधन नहीं था। कल्लन ने गाँव के सम्पन्न चमारों से बैलगाड़ी माँगी थी, लेकिन बल्हारों को वे गाड़ी देने को तैयार नहीं थे।

पीठ पर लादकर सलोनी को ले चलना कठिन हो रहा था। वह बार-बार पीठ से नीचे की ओर लूढ़क रही थी। कल्लन की पत्नी सहारा देते हुए उसके

पीछे-पीछे चल रही थी। वे जल्दी से जल्दी शहर पहुँचना चाहते थे। लेकिन रास्ता काटे नहीं कट रहा था।

जैसे-जैसे धूप चढ़ रही थी, सलोनी का जिस्म निढाल हो रहा था। उसकी साँसे धीमी पड़ गई थीं। शहर लगभग आधा किलोमीटर दूर रह गया था। अचानक कल्लन को लगा जैसे सलोनी का भार कुछ बढ़ गया है। बुखार से तपता जिस्म ठंडा पड़ गया था। उसने सरोज से कहा, "देखो तो सलोनी ठीक तो है।"

सलोनी के शरीर में कोई स्पन्दन ही नहीं था। सरोज दहाड़ मारकर चीख पड़ी थी, "मेरी बेटा को क्या हो गया... देखो तो यह हिल क्यों नहीं रही।" उसने रोते हुए कहा।

कल्लन ने सलोनी को पीठ से उतारकर सड़क के किनारे लिटा दिया था। वह हताश ठगा-सा खड़ा था। उसके अन्तस में एक हड़कंप सी मच गई थी। दस वर्ष की जीती-जागती सलोनी उसके हाथों में ही मुर्दा जिस्म में बदल गई थी। सब कुछ आँखों के सामने घटा था। वे जोर-जोर से चीखकर रो रहे थे। रास्ता सुनसान था। उनकी चीखें सुनने वाला भी कोई दूर-दूर तक नहीं था। वे काफी देर इसी तरह बैठे रोते रहे। उन्हें सूझ ही नहीं रहा था-क्या करें। सड़क किनारे कच्चे रास्ते पर सलोनी के शव को लिये वे तड़प रहे थे। काफी देर बाद एक व्यक्ति शहर की ओर से आता दिखाई पड़ा। उन्हें उम्मीद की एक झलक दिखाई दी। शायद आनेवाला उनकी कोई मदद करे।

राहगीर क्षण-भर उनके पास रुका। लेकिन बिना कुछ कहे, आगे बढ़ गया। शायद उसने उन्हें पहचान लिया था। उसी गाँव का था। कल्लन को लगा इंसान की 'जात' ही सब कुछ है।

आखिर वे उठे और बेटा का शव कन्धों पर रखकर गाँव की ओर लौट चले। कन्धों पर जितना बोझ था, उससे कहीं ज्यादा बोझ उनके भीतर समाया हुआ था। सलोनी के बचपन की किलकारियाँ रह-रहकर उनकी स्मृतियों में कुल्लुँचे भर रही थीं। भारी मन से वे सलोनी का शव उठाए गाँव की ओर बढ़

रहे थे। रास्ता जैसे खत्म ही नहीं हो रहा था। जितना समय शहर के पास पहुँचने में लगा था, उससे ज्यादा गाँव पहुँचने में लग रहा था। सरोज का हाल बहुत ही चिंताजनक था। वह सिर्फ घिसट रही थी। टूट तो कल्लन भी गया था लेकिन किसी तरह स्वयं को सँभाले हुए था। सरोज अधमरी-सी हो गई थी। उससे चला नहीं जा रहा था।

सुरजा ने उन्हें दूर से ही देख लिया था। पहचाना तो उन्हें पास आने पर ही। लेकिन दूर से आती आकृतियों को देखकर उसने अंदाज लगा लिया था। वे जिस तरह सलोनी को ला रहे थे, देखकर उसका माथा ठनका। वह घर से निकलकर सड़क तक आ गया था। सलोनी का शव देखकर वह स्वयं को नहीं सँभाल पा रहा था। वह तड़प उठा था। जमीन पर दोहलथड़ मार-मारकर वह रोने लगा था। कल्लन की आँखों से भी बेतहाशा आँसू बह रहे थे। उनका रोना-धोना सुनकर सन्तो भी आ गई थी। उन्हें ढाढ़स बँधानेवाला कोई नहीं था।

शहर से लौटने में उन्हें वैसे ही समय ज्यादा हो गया था। किसी को बुलाने के लिए भी समय नहीं था। रात-भर इंतजार करने की स्थिति में नहीं थे। कल्लन चाहता था कि शाम होने से पहले ही दाह-संस्कार हो जाए। सलोनी के शव को देखकर सरोज बार-बार बेहोश हो रही थी।

समस्या थी लकड़ियों की। दाह-संस्कार के लिए लकड़ियाँ उनके पास नहीं थीं। सुरजा और सन्तो लकड़ियों का इंतजाम करने के लिए निकल पड़े थे। उन्होंने चमारों के दरवाजों पर जाकर गुहार लगाई थी। लेकिन कोई भी मदद करने को तैयार नहीं था। घंटा-भर भटकने के बाद भी वे इतनी लकड़ी नहीं जुटा पाए थे कि ठीक से दाह-संस्कार हो सके। घर में उपले थे। सन्तो ने कहा, “लकड़ियों की जगह उपले ही ले जाओ।”

चमारों का शमशान गाँव के निकट ही था। लेकिन उसमें बल्हारों को अपने मुर्दे फूँकने की इजाजत नहीं थी। कल्लन की माँ के समय भी ऐसी ही समस्या आई थी। चमारों ने साफ मना कर दिया था। गाँव से बाहर तीन-चार किलोमीटर

दूर ले जाकर फूँकना पड़ा था। इतनी दूर सलोनी के शव को ले जाना... लकड़ी, उपले भी ले जाने थे। सुरजा और कल्लन के अलावा कोई नहीं था, जो इस कार्य में हाथ बँटा सकता था।

बल्हारों के मुर्दे को हाथ लगाने या शवयात्रा में शामिल होने गाँव का कोई भी व्यक्ति नहीं आया था। ‘जात’ उनका रास्ता रोक रही थी। कल्लन ने काफी कोशिश की थी। वह रविदास मंडल, डॉक्टर अम्बेडकर युवक सभा के लोगों से जाकर मिला था। लेकिन कोई भी साथ आने को तैयार नहीं था। किसी न किसी बहाने वे सब कन्नी काट गए थे।

रेलवे कॉलोनी में ‘अम्बेडकर जयन्ती’ के भाषण उसे याद आने लगे थे। उसने उन तमाम विचारों को झटक दिया था। गहरी वितृष्णा उसके भीतर उठ रही थी। उसे लगा, वे तमाम भाषण खोखले और बेहद बनावटी थे।

कल्लन ने सुरजा से कहा, “बापू! और देर मत करो...” उन दोनों ने कपड़े में लिपटे सलोनी के शव को उठा लिया था। स्त्रियों के शमशान जाने का रिवाज बल्हारों में नहीं था। लेकिन सन्तो और सरोज के लिए इस रिवाज को तोड़ देने के अलावा कोई और रास्ता नहीं बचा था। सन्तो ने लकड़ियों का गट्ठर सिर पर रखकर हाथ में आग और हाँडी उठा लिये थे। पीछे-पीछे सरोज उपलों से भरा टोकरा लिये चल पड़ी थी।

इस शवयात्रा को देखने के लिए चमारोंने अपनी छतों पर चढ़ गई थीं। उनकी आँखों के कोर भीगे हुए थे। लेकिन बेबस थीं, अपने-अपने दायरे में कैद। बल्हार तो आखिर बल्हार ही थे। अपने ही नहीं, उन्हें तो दूसरों के मुर्दे भी ढोने की आदत थी....

चमारों का गाँव और उसमें एक बल्हार परिवार।

(इंडिया टुडे, 22 जुलाई, 1998)



ओमप्रकाश वाल्मीकि

महत्वपूर्ण दलित साहित्यकार। 30 जून 1950 को बरला, मुजफ्फरनगर उत्तर प्रदेश में जन्म। वाल्मीकि ने अपने लेखन से दलित साहित्य को बहुत समृद्ध किया। आत्मकथा, कहानियां, कविता, आलोचना लिखकर दलित साहित्य को एक ठोस पहचान दिलवाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दलित विमर्श के भीतर कई नए सवाल खड़े करने का श्रेय इन्हें जाता है। दलित साहित्य में आन्तरिक जातिवाद को लेकर सबसे पहले सवाल इन्होंने ही उठाया। 'जूठन' आत्मकथा हिन्दी दलित साहित्य की शुरूआती आत्मकथा रही जिसने अपार प्रसिद्धि हासिल की। 'जूठन' के पंजाबी, अंग्रेजी, स्वीडिश, जर्मनी, तमिल, मलयालम, कन्नड़ सहित तमाम भाषाओं में अनुवाद हुए। 'सलाम' और 'घुसपैठिये' कहानी संग्रह प्रकाशित। 'सदियों का संताप', 'बस्स: बहुत हो चुका' और 'अब और नहीं' कविता संग्रह के अतिरिक्त 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', 'सफाई देवता' तथा 'मुख्य धारा और दलित साहित्य' आलोचना की किताबें भी प्रकाशित हुईं। फिलहाल उपन्यास लिखने में व्यस्त हैं।

सम्पर्क :- सी-5/2, आर्डनैस फैक्टरी इस्टेट,
देहरादून - 248008
मो. - 09412319034

नालन्दा पर गिद्ध

देवेन्द्र

बनारस विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष आचार्य चूड़ामणि प्राचीन परम्परा के संरचनावादी समीक्षक थे। मनु महाराज के वर्ण विभाजन और स्त्री संबंधी आग्रह आदि में उनकी अटूट आस्था थी। अनेक विश्वविद्यालयों की, पाठ्यक्रम समिति के प्रभावी सदस्य, थीसिसों के परीक्षक, हिन्दी के प्रसार और विकास के लिए स्थापित अनेक संस्थाओं के संरक्षक और खुद अपने विश्वविद्यालय में 'डीन ऑफ स्टूडेंट्स' जैसे महत्वपूर्ण पदों की जिम्मेदारियां संभाले हुए व्यस्त रहा करते थे। एक कैबिनेट मंत्री की थीसिस उन्होंने खुद लिखायी थी। शहर के मेयर और शराब के ठेकेदार मनोहर जायसवाल की पुत्रवधु उन्हीं के निर्देशन में शोध कर रही थीं। उनका व्यक्तित्व एक ऐसे वटवृक्ष की तरह था जिसने अपनी मूल जमीन की सारी उर्वराशक्ति को सोखकर उसे बन्ध्या कर दिया था। जिसके कोटरों में साँप, चमगादड़, नेवले और गिरगिट सुख चैन से रह रहे थे। जिसकी उन्नत शाखाओं पर बैठे गिद्ध हर क्षण मृत्यु की टोह में दूर टकटकी लगाये रहते। विश्वविद्यालय में नियम था कि कोई प्रोफेसर दो साल से ज्यादा विभागाध्यक्ष के पद पर नहीं रहेगा। लेकिन आचार्य चूड़ामणि के दरबार में सारे नियम-कानून पायदान की तरह बिछे रहते। कीचड़ और गंदगी पोंछने के काम आते थे सारे नियम और कानून।

सुबहे-बनारस! पंचगंगाघाट की सीढ़ियों पर हो या ठठेरी बाजार की सँकरी गलियों में चाहे जहाँ हो। उसके अस्त का उत्सव आचार्य चूड़ामणि के दरबार में